तो धरती भी गोल निकली

दीपक वर्मा

बहुत पेचीदा सवाल था कि धरती कैसी है। कभी कहा गया कि ये चपटी है, तो कभी बेलनाकार . . . लेकिन कैसे मानें? सवाल जो उठ रहे थे, ढेर सारे। और जब लोग इन सवालों का हल ढूंढते तो और नए सवाल खड़े हो जाते. . . खैर अंत में धरती गोल ही निकली।

आगे पीछे कहीं भी जाओ धरती सपाट दिखती है। फिर भी लोग कहते हैं कि यह गोल है, तो फिर यह हमें सपाट क्यों दिखती है। और अगर दिखती है तो कैसे मानें कि वह गोल है?

धरती चपटी है

पुराने ज़माने में भी लोग यही मानते थे कि धरती सपाट है, चपटी है। ऊपर की ओर नज़र उठा कर देखो तो हर कहीं आकाश-ही-आकाश है। दिन में नीला और रात में तारों से भरा काला-सा। अगर किसी खुली जगह पर जाकर चारों ओर दूर-दूर तक नज़र दौड़ाओ तो लगता है कि कहीं दूर हर कोने पर पृथ्वी और आकाश मिल रहे हों। मानो किसी ने चपटी धरती पर एक बड़ा-सा कटोरा उल्टा करके रख दिया हो।

धरती को लेकर एक धारणा यह भी थी कि यह ज़मीन का एक बहुत विशाल टुकड़ा है जिसके चारों ओर समुद्र है। और जिसका कोई अंत ही नहीं है।

लेकिन इस रचना में सूरज कहां फिट बैठता है। हर सुबह वह पूर्व में उगता है, पूरा दिन आकाश की यात्रा

चपटी धरती के ऊपर उल्टे कटोरे के समान रखे आकाश की परिकल्पना।

करने के बाद शाम को पश्चिम में डूब जाता है, अगली सुबह फिर वहीं पूर्व में...। तो रात में सूरज कहां जाता है, कैसे जाता है? कुछ लोगों ने इस सवाल का जवाब देने की कोशिश भी की – हर सुबह एक नया सूर्य बनता है और हर शाम नष्ट हो जाता है; तो कुछ का कहना था कि शाम को यह पश्चिम में समुद्र में अस्त होता है और फिर रात्रि में इसे एक नाव में रखकर पूर्व की ओर लाया जाता है। इस तरह यह हर सुबह पूर्व में उगने के लिए तैयार मिलता है।

सूर्य को लेकर ही एक दूसरी धारणा यह थी कि दरअसल यह सोने का चमकता हुआ रथ है, जादुई घोड़े इसे खींचते हैं जो हवा में भी उड़ सकते हैं। ये घोड़े पूर्व से अपनी यात्रा शुरू करते हैं और दोपहर में आकाश के सबसे ऊंचे सिरे पर पहुंच जाते हैं, इसके बाद नीचे उतरना शुरू करते हैं और शाम को पश्चिम में ज़मीन पर उतर जाते हैं। रात के समय ये किसी तरह वापस पूर्व की ओर पहुंच जाते हैं – हां, इस समय प्रकाश नहीं फेंकते।

लेकिन पहेली सिर्फ सूर्य की नहीं बल्कि चंद्रमा और छोटे-छोटे चमकते तारों की भी थी जिनसे कि आसमान भरा पड़ा है।

धरती के नीचे क्या?

इन्हीं सारे सवालों के साथ एक और गुत्थी भी थी कि अगर धरती एक विशाल ज़मीन का टुकड़ा है तो

इसकी गहराई कितनी है, यानी इसकी मोटाई क्या है? अगर हम इसमें एक गड्ढा खोदना शुरू करें तो क्या हमेशा ही खोदते रहेंगे... क्या कभी इसका कोई अंत मिलेगा नीचे?

या फिर ज़मीन दरअसल कुछ ही किलोमीटर गहरी है 50, 100, 200...? वैसे अगर यह मानकर चलें कि ज़मीन असल में केवल कुछ किलोमीटर मोटा टुकड़ा है तो एक और सवाल खड़ा हो जाता है – फिर ये किस पर टिका हुआ है या इसे नीचे गिरने से रोकने वाली चीज़ क्या है?

कुल जमा स्थिति यह थी कि हर नई व्याख्या के साथ नए सवाल खड़े हो जाते थे – और लोग उन सबके हल तलाशने में लगे हुए थे।

जैसे कि हमारे देश में इस सवाल का जवाब कुछ इस तरह दिया गया कि पृथ्वी विशाल हाथियों की पीठ पर टिकी हुई है। . . . लेकिन ये हाथी किस के सहारे खड़े हैं? जवाब आया कि ये हाथी एक विशाल कछुए की पीठ पर खड़े हैं। ये कछुआ किस आधार पर...? कहा गया कि ये कछुआ एक बहुत बड़े समुद्र में तैर रहा है। तो फिर समुद्र....? ये नीचे अंतहीन गहराई तक फैला हुआ है। तो अगर यह मान भी लें कि धरती चपटी है तब भी ढेर सारे सवालों को टिकने के लिए कोई आधार नहीं मिल पा रहा था।

2500 साल पहले

करीब ढाई हज़ार साल पहले ग्रीस में कुछ लोग इस समस्या के बारे में गहराई से सोच रहे थे। उनमें से एक था, एनक्ज़ीमेन्डर। वो रात में आकाश का अवलोकन किया करता था। उसने पाया कि सारी रात तारे, आकाश में चलते-फिरते नज़र आते हैं। लेकिन उत्तरी आकाश में एक तारा है जो अपनी जगह से बिलकुल भी नहीं हिलता-डुलता, स्थिर बना रहता है। इसके आसपास के तारे इसका चक्कर लगाते हैं; पास के तारे छोटे घेरे में और दूर के तारे बड़े घेरे में। यह स्थिर तारा था ध्रुव तारा। एनेक्ज़ीमेन्डर ने पाया कि तारे एक निश्चित क्रम में यात्रा करते हैं – यूं ही यहां-वहां नहीं भागते।

उसने सोचा कि शायद आकाश एक बहुत ही विशाल गोला है, एक बहुत बड़ी अंदर से पोली गेंद की तरह। तारे इसमें फंसे हुए हैं। यह गोला एक अक्ष के चारों ओर घूमता है। इसके साथ इसमें फंसे तारे भी घूमते हैं। इसीलिए ये हमेशा एक क्रम में गति करते दिखते हैं। इस अक्ष का एक सिरा ध्रुव तारा है। यह अक्ष धरती के केन्द्र से गुज़रता है। इसका दूसरा सिरा धरती के दूसरी ओर है, जो हमें दिखाई नहीं देता। उसने सूर्य और चांद को भी इस गोले से चिपका हुआ माना। आकाश

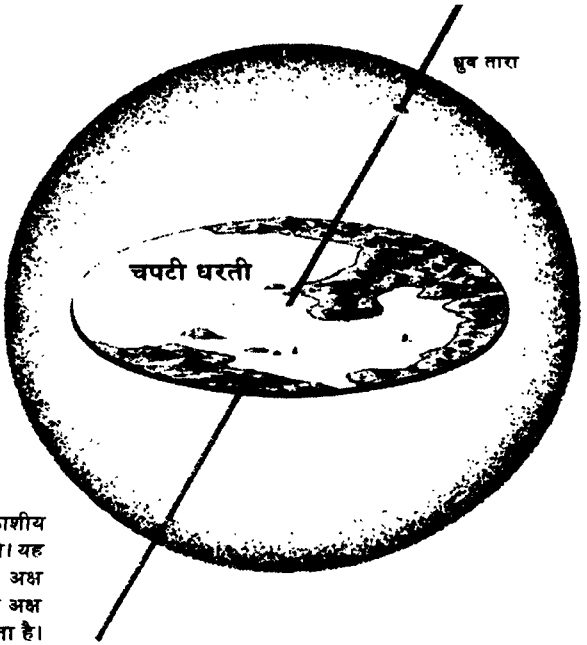

परिकल्पना: एक बड़े आकाशीय गोले के केंद्र में चपटी धरती। यह गोला ध्रुव तारे मे निकलते अक्ष के चारों ओर घूमता है। यह अक्ष पृथ्वी के केंद्र से होकर गुज़रता है।

की इस परिकल्पना के बाद उसने चपटी धरती को आकाशीय गोले के बीचों-बीच फिट कर दिया। अब तक की सब कोशिशों में ये परिकल्पना थोड़ी ज़्यादा बेहतर दिखती है, क्योंकि इसमें सूर्य रोज़ नष्ट नहीं होता बल्कि आकाशीय गोले के घूमने के साथ घूमता है और दिशा बदलता है। खैर...

कुछ नए तर्क

लेकिन एनेक्ज़ीमेन्डर यहीं पर संतुष्ट नहीं हुआ, उसने सोचना जारी रखा।

यदि धरती चपटी है और आकाशीय गोले के बीच में फिट है तो क्षितिज तक पहुंचना संभव होना चाहिए। (सैकड़ों साल पहले कुछ लोगों ने ऐसी कल्पना करके चित्र भी बनाए जिनमें कोई व्यक्ति क्षितिज पर पहुंच गया है और आकाश में सर घुसेड़कर उन कलपुर्जों को देख रहा है जो आकाशीय गोले को चलाते हैं।)

हो सकता है कि धरती आकाश के केंद्र में स्थित ज़मीन का एक बहुत बड़ा टुकड़ा हो, लेकिन अत्यंत विशाल आकाशीय गोले की तुलना में इसका आकार छोटा हो। परन्तु अगर ऐसा है तो दूर-दूर की यात्रा करने वाले यात्री इस टुकड़े के बिलकुल किनारे पर क्यों नहीं पहुंच पाते – जब भी वे दूर आगे बढ़ते हैं, समुद्र आ जाता है।

शायद ऐसा है कि ज़मीन तो बीच में है और चारों तरफ समुद्र ही समुद्र। परन्तु अगर ऐसा है तो धरती के किनारों से होकर पानी बह क्यों नहीं जाता और समुद्र खाली क्यों नहीं हो जाता?

शायद ऐसा इसलिए हो कि धरती के किनारे उठे हुए हैं – एक बड़ी कटोरी की तरह। इसीलिए पानी रुका हुआ है। तब तो धरती एक बड़ी कटोरी की तरह होगी।

. . . अगर एक पत्थर को हवा में छोड़ो तो वह नीचे गिरता है। फिर यह कटोरीनुमा धरती नीचे क्यों नहीं गिरती? कोई भी चीज़ बिना किसी टेके के हवा में ही कैसे लटकी रह सकती है।

यानी अगर आकाश को घूमता हुआ गोला मान कर चांद, तारों की गति समझा दें तो भी धरती को सपाट मानना टेढ़ी खीर ही था। सवाल-पे-सवाल जो थे। तो फिर धरती है कैसी?

चांद और सूर्य

तारे इतने छोटे-छोटे, बिन्दुओं के समान थे कि उनके बारे में कुछ भी कहना काफी मुश्किल था। लेकिन ऐसी दो चीज़ें थीं – सूर्य और चांद, जो सबसे फर्क दिखती थीं।

सूर्य हमेशा प्रकाश फेंकता हुआ गोला नज़र आता है, परन्तु चांद कभी पूरा चमकता हुआ गोला दिखता है तो कभी दो तिहाई, कभी आधा, तो कभी एक पतली-सी वक्र रेखा।

दिन, रात आकाश का अवलोकन कर रहे ग्रीस के लोगों ने पाया कि चंद्रमा सूर्य के सापेक्ष अपनी स्थिति बदलता रहता है। साथ ही यह अपना आकार भी बदल लेता है।

जब चंद्रमा पृथ्वी के एक ओर होता

कटोरी जैसे उठे हुए किनारे वाली पृथ्वी की परिकल्पना।

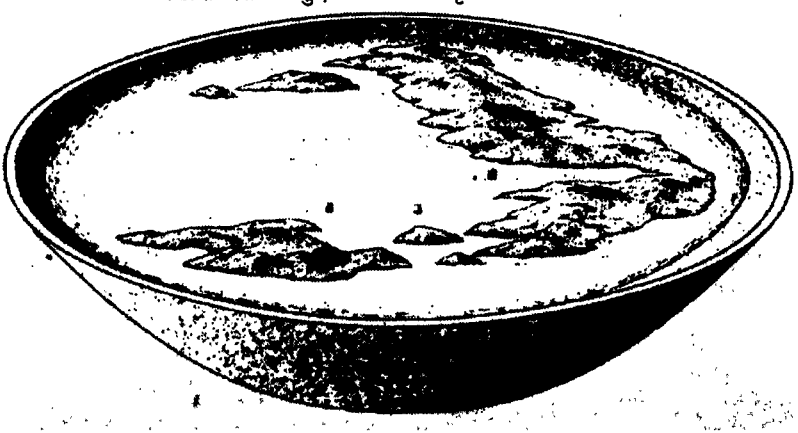

है और सूर्य दूसरी ओर – तब चंद्रमा पूरा चमकता हुआ गोला दिखता है। इसी तरह जब चांद और सूर्य दोनों पृथ्वी के एक ही तरफ होते हैं, तब अंधेरा हिस्सा हमारी तरफ होता है और चमकता हुआ हिस्सा इसके उल्टी तरफ; इसलिए हम इसे नहीं देख पाते। इस अवलोकन के बाद उन्होंने माना कि सूर्य के पास अपना खुद का प्रकाश है, चंद्रमा के पास नहीं। चंद्रमा सूर्य के प्रकाश से ही चमकता है।

इसी दौर में ग्रीस में ज्यामिति में तेज़ी से शोध हो रही थी। इस वजह से उन्हें अलग-अलग तरह के आकारों की विभिन्न स्थितियों की काफी जानकारी थी। चंद्रमा की विभिन्न स्थितियों को देखकर उन्होंने पाया कि एक गोले पर विभिन्न दिशाओं से प्रकाश डालकर यह स्थितियां बनाई जा सकती हैं। इसका मतलब हुआ – चंद्रमा गोल है। लेकिन सूर्य . . .?

सूर्य हर कोण से चंद्रमा पर रोशनी फेंकता है और वो भी बराबर – चाहे चंद्रमा पृथ्वी के पीछे हो या फिर आगे सूर्य की तरफ। कोई आकार जो चारों दिशाओं में एक-सा प्रकाश फेंके – गोला ही हो सकता है। तो सूर्य भी गोल है!

. . . आकाश एक गोला है, सूर्य भी और चंद्रमा भी। क्या इसका अर्थ यह लगाया जाए कि पृथ्वी भी गोल है। लेकिन ज़रूरी नहीं कि ये नियम पृथ्वी पर भी लागू हो। आखिरकार सूर्य चमकता, धधकता गोला है, जबकि धरती नहीं। चांद आकाश में गति करता मालूम होता है, लेकिन पृथ्वी तो स्थिर नज़र आती है।

● ● ●

चांद की अलग-अलग स्थितियां।

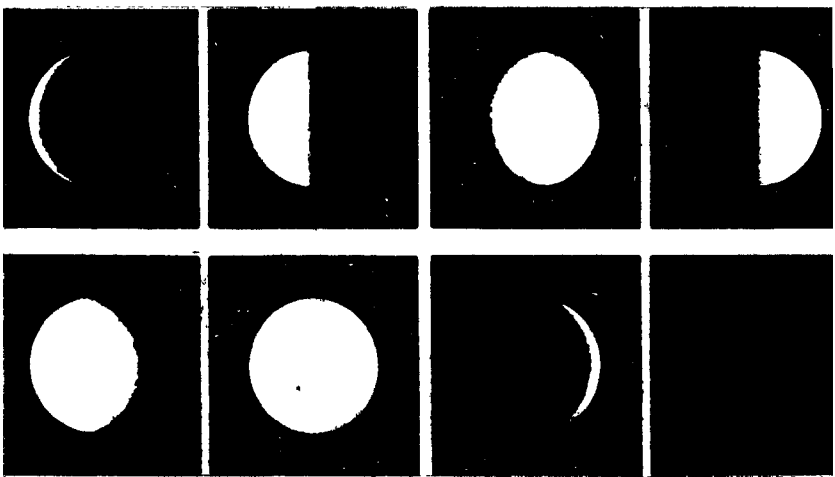

दूर देश के यात्री

उस समय दूर-दूर की यात्रा करने वाले यात्री पाते थे कि जब वे उत्तर की ओर जाते हैं, आकाश थोड़ा बदला हुआ नज़र आता है। अपने शहर, देश में, जो तारे उन्हें क्षितिज पर दिखते हैं, वे दूर जाने पर दिखना बंद हो जाते हैं। जब वे वापस लौटकर अपने शहर आते हैं तो उन्हें वही तारे क्षितिज पर फिर से दिखने लगते हैं। दक्षिण दिशा में जाने वाले यात्री भी इसी प्रकार की स्थिति पाते थे।

वैसे यह अनुभव पूर्व और पश्चिम की ओर जाने वाले यात्रियों को भी होता था – लेकिन धारणा यह थी कि आकाशीय गोला ध्रुव तारे से निकलते अक्ष के चारों ओर पूर्व से पश्चिम में घूमता है। तो इस घूर्णन के साथ नए तारे भी दिखेंगे। इसलिए सवाल पूर्व-पश्चिम का नहीं बल्कि उत्तर-दक्षिण दिशा का था – कि यात्रियों को आकाश क्यों बदलता दिखता है। अगर धरती चपटी है तो इस पर कहीं भी जाओ हर जगह से सारे तारे नज़र आने चाहिए। लेकिन ऐसा होता नहीं है। इस प्रश्न में उलझे एनेक्ज़ीमेन्डर ने सोचा कि कहीं धरती बेलनाकार डिब्बे की तरह तो नहीं! जो आकाश के बीचों-बीच पड़ा है। जब आप उत्तर की ओर बढ़ते हैं तो बेलन की वक्राकार ढलान के सहारे-सहारे चलते हैं। जब पीछे पलटकर देखते हैं तो ये ढलान कुछ तारों को अपने पीछे छुपा लेती है। यही दक्षिण दिशा में आगे बढ़ने पर भी होता है।

तो कुछ इस तरह व्याख्या की गई तारों के छुपने की। लेकिन अगर धरती बेलनाकार है तो चपटी क्यों दिखती है?

इसका जवाब कोई खास कठिन नहीं था। दरअसल पृथ्वी इतनी विशाल है और उसकी तुलना में हम इतने छोटे कि आसपास नज़र दौड़ाएं तो इसका एक बहुत छोटा-सा ही हिस्सा देख पाते हैं। और इस छोटे से हिस्से में बेलन की वक्र इतनी कम मुड़ती है कि यह चपटी ही दिखाई देती है।

ब्रह्मांड के बीच में बेलनाकार धरती की परिकल्पना।

चित्र: उमेश गौर

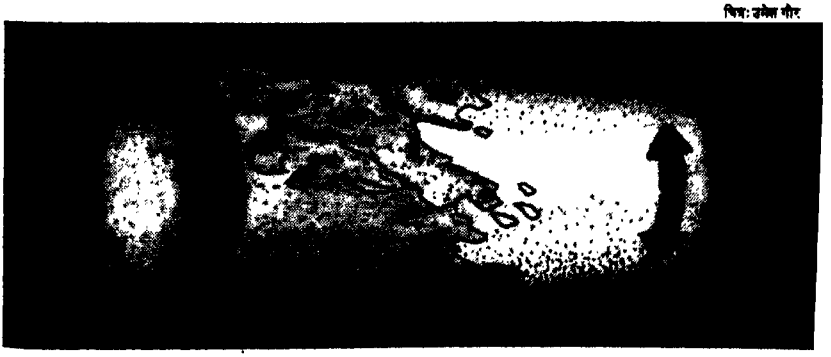

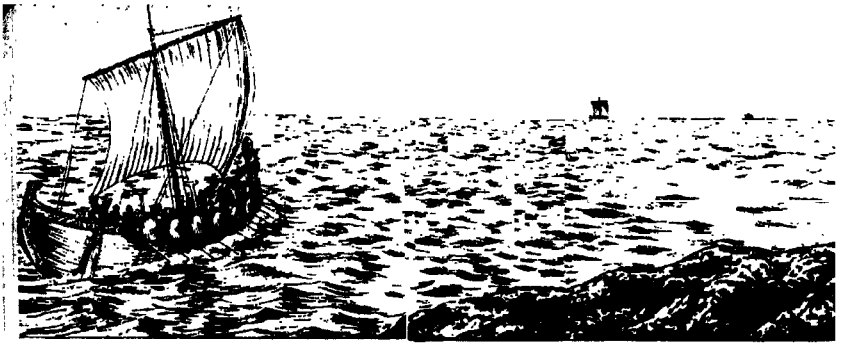

पानी की सतह पर दूर जाते जहाज़ ऐसे दिखते हैं मानों कि डूब रहे हों।

लेकिन यहां भी एक सवाल मौजूद था कि अगर धरती पर ढलान है तो हम फिसल क्यों नहीं जाते? या फिर आगे बढ़ने पर ऐसा क्यों नहीं लगता कि हम ढलान पर उतर रहे हैं?

डूबते जहाज़

धरती पर तो पेड़ हैं, पहाड़ हैं, ऊबड़-खाबड़ ढलान हैं, पर समुद्र में फैला पानी एकदम सपाट दिखता है। दूर-दूर तक देखो, बस पानी ही पानी।

पानी पर चलते जहाज़ों को दूर तक जाता देखने वाले एक बात महसूस करते थे कि जैसे-जैसे जहाज़ दूर जाता है तो वो धीरे-धीरे आंखों से इस तरह ओझल होता है मानों पानी में डूब रहा हो। पहले उसका नीचे का हिस्सा गायब होता दिखता है और सबसे आखिर में उसका पतवार बांधने वाला खंभा।

जब जहाज़ लौटता तो यात्री कसम खाकर बताते कि नहीं, जहाज़ कहीं भी नहीं डूबा। आखिर क्या है इसका मतलब? अगर धरती चपटी है तो जहाज़ों को धीरे-धीरे छोटा होना चाहिए दूर जाने पर, और पूरे के पूरे जहाज़ को दिखते रहना चाहिए। पर ऐसा क्यों नहीं होता?

. . . तो क्या जिस तरह तारों को पृथ्वी की वक्राकार ढलान अपने पीछे छिपा लेती है, उसी तरह आगे बढ़ते जहाज़ को भी वक्राकार ढलान अपने पीछे छिपा लेती है? लेकिन तारों की बात तो सिर्फ उत्तर-दक्षिण क्षितिज तक ही मानी जाती थी। पूर्व और पश्चिम की बात तो हमेशा 'आकाश के घूमने' में खो जाती थी।

लेकिन यहां तो चारों दिशाओं में जाते जहाज़ इसी तरह गायब होते दिखते थे कि पहले जहाज़ का निचला हिस्सा गुम होता नज़र आता, उसके बाद ऊपर वाला। तो इस गुत्थी का मतलब निकलता है कि पृथ्वी की हर दिशा में वक्राकार ढलान है और वो

भी एक जैसी।

अब अगर विभिन्न आकारों को देखें तो ऐसा एकमात्र आकार सिर्फ गोला है जो चारों ओर समान दूरी पर समान रूप से झुका हुआ है। . . . तो धरती भी गोल है! एक बड़े आकाशीय गोले के केन्द्र में स्थित एक और गोला जो आकाश की तुलना में छोटा है, लेकिन इंसान के आकार की तुलना में बहुत बड़ा। और इसी बड़े आकार की वजह से वक्र किसी भी जगह पर इतना कम झुकता है कि इसे महसूस करना मुश्किल है। इसीलिए हमें चपटी नज़र आती है पृथ्वी।

लेकिन क्या कोई और तरीका या तथ्य थे जिनके आधार पर इस दावे में और वज़न डाला जा सके।

चन्द्रग्रहण

कुछ दिनों के अंतराल के बाद चांद अपनी चमक खो देता है। इस पर एक काली छाया पड़ती दिखती है। थोड़े समय के बाद यह छाया दूर हो जाती है और चांद, अपनी चमक बिखेरता फिर से वैसा ही दिखने लगता है। ऐसी स्थिति में कहते हैं कि चंद्र को ग्रहण लग गया।

पुराने समय में लोग डर जाया करते थे कि एक बार चांद छुप गया तो शायद वापस नहीं आएगा।

लेकिन जो लोग आकाश के अवलोकन में लगे थे, जानते थे कि ऐसा नहीं होगा। उन्होंने गौर किया कि ग्रहण के समय चांद पूर्ण होता है। वे जानते थे कि पूरा चमकता चंद्र तभी दिखता है जब वह पृथ्वी के पीछे हो। यानी सूर्य और चांद के बीच पृथ्वी हो।

मान लो कि अगर कभी धरती, सूर्य और चंद्रमा के बिलकुल बीच में आ जाती है तो वो सूर्य की रोशनी को रोक लेगी और चंद्रमा तक प्रकाश नहीं पहुंच पाएगा। इस स्थिति में पृथ्वी की छाया बनेगी। यही होता है – चंद्रग्रहण के समय चन्द्रमा पृथ्वी की

चंद्रग्रहण की स्थिति

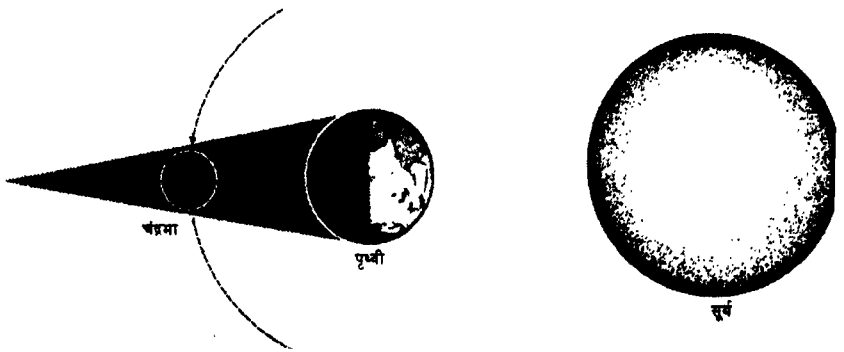

छाया में छुप जाता है। ग्रीस के लोगों ने गौर किया कि चंद्रमा पर पड़ रही पृथ्वी की छाया, हमेशा गोलाकार वक्र दिखती है; मानों कि किसी गोले का भाग हो। उन्होंने कई चंद्रग्रहणों का अवलोकन किया। हर बार छाया को गोलाकार वक्र ही पाया। यानी पृथ्वी का आकार ऐसा है जो चंद्रमा पर गोलाकार वक्रनुमा छाया बनाता है। केवल एक आकार ऐसा है जिस पर किसी भी दिशा से प्रकाश डालो, किसी दूसरे गोले पर उसकी छाया गोलाकार वक्र ही बनेगी। और वो है गोला।

ईसा से 450 साल पहले फिलोलॉस नाम का एक दार्शनिक इन तर्कों के आधार पर पूर्ण रूप से संतुष्ट हो चुका था कि पृथ्वी गोलाकार है। उसने तमाम तथ्यों को सामने रखा – आकाश में तारों की बदलती स्थिति, पानी के जहाज़ का गायब होना, चंद्रग्रहण के समय पृथ्वी की छाया – और अंत में हर बार पृथ्वी गोल ही निकली।

अभी तक हमें जो जानकारी है उसके आधार पर कह सकते हैं कि फिलोलॉस ही पहला व्यक्ति था जिसने साफ शब्दों में कहा कि पृथ्वी गोल है। और ईसा से लगभग चार सौ साल पहले तक शायद दुनिया के अधिकांश हिस्सों में यह माना जाने लगा था कि पृथ्वी गोल है।

लेकिन सवालों का उठना जारी था – अब जब तय हो गया था कि धरती गोल है तो दिमाग में बात आती ही है कि तो हम इसकी ढलान पर से फिसल क्यों नहीं जाते? या फिर धरती का ये गोला कितना बड़ा है?... आदि-आदि। इन सब पर चर्चा फिर कभी।

दीपक वर्मा – संदर्भ में कार्यरत।

यह लेख आइज़ेक एसिमोव की किताब 'द अर्थ इज़ राउण्ड' पर आधारित है।